दैनिक जागरण

Date: 23-05-26

द्विपक्षीय संबंधों को दिशा देने वाला दौरा

हर्ष वी. पंत, (लेखक आब्जर्वर रिसर्च फाउंडेशन में उपाध्यक्ष हैं)

अमेरिकी विदेश मंत्री मार्को रूबियो का चार दिवसीय भारत दौरा किसी आम राजनयिक दौरे के सामान्य पड़ाव से कहीं बढ़कर है। यह वाशिंगटन द्वारा एक ऐसे रिश्ते को स्थिर कर उसे पटरी पर लाने के लिए नए सिरे से किए जाने वाले प्रयासों को भी रेखांकित करता है, जिन संबंधों में बीते कुछ समय से खासी उथल-पुथल रही है। यह शक्ति संतुलन की राजनीति के प्रति भारत के निरंतर परिपक्व होते परिष्कृत दृष्टिकोण को भी दर्शाता है। एक ऐसे दौर में जहां अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था विखंडन के दौर से गुजर रही है, वहां नई दिल्ली पश्चिमी देशों के नेतृत्व वाले क्वाड और गैर-पश्चिमी देशों के ब्रिक्स जैसे दोनों गठबंधनों के साथ जुड़ाव को और गहरा करके अपने रणनीतिक लचीलेपन को धार देने में लगी है।

रूबियो 23 से 26 मई के बीच भारत में रहेंगे। विदेश मंत्री के रूप में उनका यह पहला भारत दौरा है, जिसका प्रतीकात्मक एवं रणनीतिक दोनों स्तरों पर महत्व है। कोलकाता, जयपुर, आगरा और नई दिल्ली जैसे पड़ावों से गुजरने वाले उनके इस दौरे के बहुत गहरे निहितार्थ हैं, जिसके तार सभ्यतागत संपर्क को भू-राजनीतिक वास्तविकताओं के साथ जोड़ते हैं। स्वाभाविक है कि इसमें एक गंभीर कूटनीतिक एजेंडा भी है, जिसकी कड़ियां ऊर्जा सुरक्षा, व्यापारिक मुद्दों, रक्षा सहयोग और महत्वपूर्ण आपूर्ति शृंखलाओं के पुनर्गठन से जुड़ी हैं। इस यात्रा का समय भी विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। ट्रंप प्रशासन के दूसरे कार्यकाल में भारत-अमेरिका संबंधों में टैरिफ, भारत की रूस के साथ निरंतर सक्रियता और क्वाड को लेकर शिथिलता के चलते तनाव दिखा है। इस परिदृश्य में रूबियो की भारत यात्रा वाशिंगटन की उसी मान्यता का प्रतीक है कि कतिपय असहमतियों के बावजूद भारत अमेरिका की हिंद-प्रशांत रणनीति के लिए अपरिहार्य बना हुआ है।

इस यात्रा के केंद्र में क्वाड विदेश मंत्रियों की बैठक है। भारत के अलावा अमेरिका, जापान और आस्ट्रेलिया क्वाड का हिस्सा हैं। समय के साथ क्वाड एक परामर्शीय मंच से बढ़कर हिंद-प्रशांत रणनीतिक ढांचे का एक केंद्रीय स्तंभ बनकर उभरा है। वाशिंगटन के लिए यह चीन के बढ़ते क्षेत्रीय प्रभाव को संतुलित करने के साथ ही तकनीकी समन्वय, समुद्री सुरक्षा और आपूर्ति शृंखला के लचीलेपन में बढ़ोतरी का एक माध्यम भी है। इसलिए क्वाड के आयोजन में रूबियो की उपस्थिति साझेदारों को यही आश्वस्त करने वाली है कि वैश्विक स्तर पर विभिन्न गतिरोधों के बावजूद अमेरिका हिंद-प्रशांत को लेकर उतना ही प्रतिबद्ध है। चूंकि क्वाड एक औपचारिक गठबंधन नहीं, इसलिए यह भारत के लिए किसी खांचे में बंधे बिना ही बहुत उपयोगी प्रतीत होता है। नई दिल्ली भी इसे सामरिक छत्र प्रदान करने वाले किसी समूह के बजाय लचीली रणनीतिक

साझेदारी के रूप में ही देखती है। यह अंतर इसलिए महत्वपूर्ण है, क्योंकि क्वाड भारत को अपनी विदेश नीति स्वायत्तता से समझौता किए बिना ही रक्षा प्रौद्योगिकी, समुद्री सहयोग और भू-राजनीतिक समन्वय के अवसर प्रदान करता है।

क्वाड बैठक की मेजबानी से कुछ दिन पहले ही भारत ने ब्रिक्स विदेश मंत्रियों से जुड़ा आयोजन भी किया था। ब्रिक्स में अब पारंपरिक सदस्यों के साथ ईरान जैसे देश भी शामिल हैं। कुछ जानकारों के लिए दोनों स्तरों पर भारत की यह भागीदारी विरोधाभासी लग सकती है, लेकिन वास्तव में यह भारत की समकालीन विदेश नीति की तार्किकता को ही प्रदर्शित करती है, जो किसी एक रेखा में चलने के बजाय बहुस्तरीय सक्रियता को वरीयता देती है। वैसे भी ब्रिक्स के माध्यम से भारत के कई उद्देश्य पूरे होते हैं। वैश्विक दक्षिण की एक मुखर आवाज के रूप में भारत के कद को मजबूत बनाते हुए यह सहभागिता रूस के प्रति रणनीतिक सहयोग को दृढ़ता प्रदान करती है और बहुध्रुवीय अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को मजबूती देती है। ब्रिक्स भारत को वैश्विक शासन सुधार और आर्थिक पुनर्गठन पर बहस को आकार देने के लिए भी एक महत्वपूर्ण मंच प्रदान करता है। पश्चिम पर भारत की निर्भरता घटाता है। वस्तुत: ये दोनों साझेदारियां असंगति नहीं, अपितु रणनीतिक समायोजन अधिक है।

स्पष्ट है कि प्रतिस्पर्धी शक्ति केंद्रों के बीच भारत अपने प्रभाव को अधिकतम करने का प्रयास कर रहा है। देखा जाए तो ब्रिक्स और क्वाड की बैठकों की निकटता कोई संयोग नहीं, बल्कि प्रतिकूल भू-राजनीतिक मंचों के बीच भारत की सहजता से कार्य करने की क्षमताओं को दर्शाती है। संतुलन साधने की यह कवायद भी जटिलताओं से मुक्त नहीं है। जहां वाशिंगटन रूस और चीन से संबंधित मुद्दों पर भारत से अधिक समन्वय की अपेक्षा करता है। वहीं, भारत आर्थिक वास्तविकता, रक्षा निर्भरता और सुरक्षा चिंताओं के स्तर पर अपने हित सुरक्षित करने की कवायद में इसे लेकर भी सतर्क रहता है कि कहीं मास्को या बीजिंग इसे गलत अर्थों में न लें। वापस रूबियो की यात्रा की बात करें तो इसे वैश्विक राजनीति में एक व्यापक पुनर्संयोजन के तौर पर देखा जाना चाहिए। इसमें कोई संदेह नहीं कि तकनीकी आधुनिकीकरण, रक्षा परिवर्तन और आर्थिक विकास के लिए भारत को अमेरिका की आवश्यकता है, लेकिन भारत किसी खेमे से एकतरफा जुड़ाव न रखने को लेकर भी उतना ही दृढ़ है। इस संदर्भ में रूबियो की यात्रा भारत की समकालीन रणनीतिक पहचान को ही प्रदर्शित करती है।

नई दिल्ली अब केवल शक्ति समीकरणों को ही नहीं साध रही, अपितु ध्रुवीकृत दुनिया में वैश्विक परिणामों को आकार देने के लिए संबंधों, संस्थानों और अपेक्षाओं के स्तर पर भी संतुलन बना रही है। ऐसे में रूबियो के दौरे की सफलता बड़ी-बड़ी घोषणाओं से अधिक इस पर निर्भर करेगी कि दोनों पक्ष एक दूसरे की रणनीतिक आवश्यकताओं को किस प्रकार संबोधित करेंगे। विशेष रूप से भारत के इस रुख को देखते हुए कि वह नए दौर के शीत युद्ध में किसी खेमे का हिस्सा बनने के बजाय भावी बहुध्रुवीय ढांचे में स्वयं को एक स्वायत्त ध्रुव के रूप में देखता है।

Date: 23-05-26

फिर से न उभरने पाएं माओवादी

श्रवण गुप्ता, (लेखक वरिष्ठ पत्रकार एवं राजनीतिक विश्लेषक हैं)

माओवाद का जहर निकालने के बाद मोदी सरकार अब प्रभावित इलाकों की सुरक्षा और वहां विकास सुनिश्चित करने में जुट गई है। बीते दिनों बस्तर में केंद्रीय गृहमंत्री अमित शाह ने यहां विकास न पहुंचने का कारण माओवाद को बताते हुए कहा कि गैर-भाजपा सरकारों ने तो माओवाद मुक्त अभियान में हमारा सहयोग किया, लेकिन कांग्रेस की सरकार ने नहीं किया।

इस पर विचार करना आवश्यक है कि 1960 के दशक में बंगाल के नक्सलबाड़ी से उठा ये बवंडर कैसे 14 राज्यों के लगभग 150 जिलों तक फैल गया? कैसे माओवादी तिरुपति से लेकर पशुपतिनाथ तक लाल गलियारा बनाने में जुटे? आखिर वे कौन सरकारें थीं, जिन्होंने हजारों निर्दोष लोगों की हत्याएं करने वाले माओवादियों को फलने-फूलने दिया और उन्हें बिगड़ैल बच्चा कहकर आगे बढ़ाया?

यह अकारण नहीं है कि पीएम मोदी कांग्रेस को माओवाद समर्थक बताते हैं। कांग्रेस का इतिहास माओवाद के समर्थन का भी रहा है। वह माओवाद को एक सामाजिक-आर्थिक समस्या बताती रही। इसी के चलते 1970-80 के दशक में माओवादी फैलते चले गए। 1990 के दशक की शुरुआत में माओवादियों ने जब छत्तीसगढ़ में बस्तर के साथ ओडिशा, आंध्र और महाराष्ट्र के कुछ हिस्सों को मिलाकर दण्डकारण्य आदिवासी राज्य बनाने के लिए हिंसक गतिविधियां तेज कीं, तब भी कांग्रेस की सरकारें निष्क्रिय बनी रहीं।

इस दौरान सैकड़ों जवान बलिदान हुए और निर्दोष नागरिक मारे गए। आंध्र की वाइएसआर रेड्डी की कांग्रेस सरकार ने तो 2004 में पीपुल्स वार ग्रुप से समझौता वार्ता तक कर ली थी। हालांकि टीडीपी का रुख खिलाफ रहा। 2003 में माओवादियों ने तत्कालीन मुख्यमंत्री चंद्रबाबू नायडू पर हमला भी किया था।

एक समय माओवादियों ने दक्षिण में अपना जंक्शन बना लिया था, जिसे वे केकेटी जोनल कमेटी कहते थे। केकेटी यानी केरल, कर्नाटक और तमिलनाडु। दक्षिण में माओवादियों का कितना असर था, इसका अंदाजा इससे लगाया जा सकता है कि उन्होंने यहीं आइईडी ब्लास्ट की तकनीक लिट्टे से सीखी थी। माओवादियों ने कांग्रेस को भी घाव दिए। 2013 में छत्तीसगढ़ के सुकमा जिले की झीरम घाटी में उन्होंने घात लगाकर हमला किया, जिसमें राज्य कांग्रेस का लगभग पूरा नेतृत्व खत्म हो गया। इसके बाद कांग्रेस का रुख थोड़ा बदला, पर 2018 से 2023 तक छत्तीसगढ़ की बघेल सरकार ने माओवादियों के खिलाफ वैसा अभियान नहीं छेड़ा, जैसा आवश्यक था।

जब बीती 31 मार्च माओवाद के खात्मे की डेडलाइन थी, तब तेलगांना की कांग्रेस सरकार ने कहा कि राज्य में किसी माओवादी का एनकाउंटर नहीं होगा। यही वजह रही कि देश के दूसरे हिस्सों में जब माओवादियों का एनकाउंटर हो रहा था, तब

तेलंगाना से एक भी बड़े एनकाउंटर की खबर नहीं आई। छत्तीसगढ़ में आपरेशन के दौरान माओवादी भागकर तेलंगाना के जंगलों में शरण ले रहे थे, इसलिए वहां से सिर्फ माओवादियों के सरेंडर की खबरें आईं।

माओवादियों के खिलाफ देश के अलग-अलग हिस्सों में अभियान चल रहे थे, लेकिन संघर्ष क्षेत्र बस्तर यानी दण्डकारण्य और अबूझमाड़ का जंगल था। इसी दण्डकारण्य से तेलंगाना, आंध्र, ओडिशा की सीमा लगती हैं। यहां माओवादियों का जोर था। अबूझमाड़ से गढ़चिरौली-महाराष्ट्र की सीमा लगती है, जिसे पिछले सप्ताह आपरेशन अंतिम प्रहार के बाद आधिकारिक रूप से माओवाद से मुक्त घोषित किया गया। अकेली कांग्रेस ही माओवादियों के प्रति नरम नहीं थी।

अनेक ऐसे समूह भी थे, जो उनसे सहानुभूति रखते थे। 2003 में छत्तीसगढ़ में जब रमन सिंह की भाजपा सरकार आई तो पुलिस और अर्धसैनिक बलों को गुरिल्ला युद्ध का प्रशिक्षण देने के लिए नगालैंड आर्म्ड फोर्स की बटालियन बस्तर बुलाई गई। उसने बीजापुर के सलवा जुडूम के साथ मिलकर माओवादियों पर जबरदस्त दबाव बनाया। सलवा जुडूम ग्रामीणों का समूह था, जो माओवादियों के खिलाफ उठ खड़ा हुआ था। 2005 से 2007 के बीच नगा बटालियन ने माओवादियों की जड़ें हिला दी थीं।

माओवाद समर्थकों से यह देखा नहीं गया। वामपंथियों ने छत्तीसगढ़ में नगा बटालियन भेजे जाने पर खूब हाय-तौबा मचाई। आखिर 2007 में उसे वापस बुला लिया गया। इससे माओवादियों का हौसला बढ़ा। उन्होंने 2007 में बीजापुर के रानी बोडली गांव में पुलिस कैंप पर हमला कर उसमें आग लगा दी, जिसमें 55 जवान जिंदा जल गए। 2010 में सुकमा के तारमेटला में माओवादियों ने हमला किया, जिसमें सीआरपीएफ के 76 जवान बलिदान हो गए।

2010 ऐसा साल रहा, जिसमें सबसे ज्यादा हिंसा हुई। सलवा जुडूम को भी माओवादी समर्थकों ने चलने नहीं दिया। सुप्रीम कोर्ट में इसके खिलाफ याचिका दायर की गई। 2011 में सुप्रीम कोर्ट के जज बी. सुदर्शन रेडडी ने सलवा जुडूम को अवैध ठहरा दिया। गत वर्ष कांग्रेस ने इन्हीं सुदर्शन रेडडी को उपराष्ट्रपति पद का प्रत्याशी बनाया। शायद इसी कारण गृहमंत्री अमित शाह ने यह कहा कि आदिवासियों को दशकों तक गुमराह करने और खूनी खेल खेलने वाले लोग अब हार मान चुके हैं, पर वे शांत नहीं बैठेंगे। वे भेष बदलकर फिर से आ सकते हैं। साफ है कि इसके प्रति सतर्क रहना होगा कि माओवादी फिर सिर न उठाने पाएं।